विदेशों में धार्मिक आस्था

डॉ० महेन्द्र राजा जैन

इंडियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली

पच्चीस वर्षों से अधिक समय तक विदेशों में रहकर अब जब मैं भारत लौटा हूं, तो यहां रहते हुए मेरे ध्यान में बराबर एक बात आती है। धर्म के विषय में हम लोग संकीर्ण क्यों हैं? मैं या मेरे समान अन्य अगणित जन्मजात जैन अन्य धर्मों की बात तो दूर, स्वयं अपने ही धर्म के विषय में कितना जानते हैं? बचपन में मेरी शिक्षा वर्णी विद्यालय, सागर, बड़वानी तथा वाराणसी के स्याद्वाय महाविद्यालय में हुई। इन तीनों ही जगह प्रायः एकही पद्धति से जैनधर्म सम्बन्धी जो बातें मुझे बताई, सिखाई गई, वे अभी भी मुझे अच्छी तरह याद हैं। परम्परागत शास्त्रीय पद्धति से सिखाई गई उन बातों के सामाजिक, सांस्कृतिक और सार्वदेशिक स्वरूप को हमें कभी नहीं समझाया गया। हमें केवल यही बताया गया कि जैन शास्त्रों और धर्मग्रन्थों में जो लिखा है, वही पढ़कर परीक्षा पास करना है। उन बातों के सम्बन्ध में शंका-संदेह हमें अधार्मिक एवं अजैन की पात्रता देगा। हमें यह तो बताया गया कि अमुक धर्मानुयायी मांसाहारी हैं, म्लेच्छ हैं, वे पर्वों के दिन हिंसा करते हैं, अतः हमें उनसे दूर रहना चाहिये। पर हमें यह कभी नहीं बताया गया कि पुरान-जैन धर्मग्रन्थों में क्या लिखा है? हिन्दू और जैन अन्य पश्चिमी धर्मों को भी म्लेच्छ और भ्रष्ट मानते हैं। पर हमने कभी यह जानने का यत्न नहीं किया कि उनके धर्मग्रन्थों में क्या लिखा है? आज जैन समाज में अगणित पण्डित और धर्माचार्य प्रतिदिन अपने भाषणों में अन्य धर्मों की निन्दा करते देखे जाते हैं। पर कितनों ने उनके धर्म ग्रन्थों को पढ़ा है? गीता, कुरान, बाइबिल, जिन्द अवेस्ता आदि धर्मग्रन्थों का अध्ययन कर कितनों ने उनके मूलतत्वों को जानने की कोशिश की है? जैनधर्म का मूल सिद्धान्त है—घृणा पापी से नहीं, पाप से करना चाहिये। पर आज ही क्या, हम तो प्रारम्भ से ही व्यक्ति से घृणा करते आ रहे हैं। हमें बचपन से सिखाया ही यही गया है। अन्यथा क्या कारण है कि अन्य धर्मों का नाम सुनते ही हम मुंह फेर लेते हैं?

संभवतः यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि ब्रिटेन के मूल निवासियों में प्रायः ९९.९९ प्रतिशत ईसाई हैं। इनमें भी अपने यहां के हिन्दुओं और जैनों के समान अलग-अलग वर्ग बन गये हैं—कैथोलिक, प्रोटेस्टेन्ट, बैप्टिस्ट, प्रेस्बीटेरियन, सेवन्थ डे एडवेन्टिस्ट, क्रिस्टियन साइंन्टिस्ट आदि। मूलतः ये सभी ईसाई हैं। लन्दन में पहले ही दिन मैं जिस परिवार में 'पेइंग गैस्ट' के रूप में ठहरा, उस परिवार की महिला ने मेरा धर्म, जाति आदि पूछे बिना ही सहर्ष कुछ समय के लिये अपना एक कमरा किराये पर दे दिया। किराये में सुबह का नाश्ता भी शामिल था। मैं मैडम सी होम के यहां शाम को पहुँचा था। उन्होंने सुबह नाश्ते के विषय में पूछा, "आप क्या लेना पसन्द करेंगे?"

"जो आप सामान्यतः लेते हैं, वही मैं ले लूंगा। पर मैं शाकाहारी हूँ। अंडा, मांस, मछली आदि कुछ भी नहीं लूंगा।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कमरे में सामान रख चुकने के बाद जब मैं हाथ-मुंह धोकर तैयार हुआ, तो उन्होंने मुझे अपने ही 'ड्राइंग रूम' में बुला लिया और बिस्किट-काफी देने के बाद मुझसे मेरे विषय में पूछने लगीं। मैंने उन्हें बताया, "मैं जैन धर्म मानता हूँ', तो उनकी समझ में कुछ नहीं आया। उन्हें यह तो पता था कि मैं नाम से जैन हूँ, पर धर्म से भी मैं जैन हूँ, यह उन्हें कुछ बेतुका-सा लग रहा था। बाद में जब मैंने उन्हें जैन धर्म के विषय में कुछ बातें बताई, तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने और भी जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा, "वे कल पब्लिक लाइब्रेरी जाकर जैनधर्म सम्बन्धों कुछ पुस्तकें लाकर पढ़ेंगी।"

लगभग १९६८-६९ की बात है। तब मैं सपरिवार लंदन के बालहम क्षेत्र में रह रहा था। हमारे घर से कुछ ही दूर एक अंग्रेज पादरी रहते थे। उन्हें जब मेरे विषय में पता चला, तो एक दिन उन्होंने मुझे अपने घर पर चाय के लिये आमन्त्रित किया। मैं जब उनके घर गया, तो उन्होंने भारत और जैनधर्म पर बहुत देर तक बातें कीं। वे जैनधर्म के सम्बन्ध में पहले से भी काफी जानते थे, यह जानकर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। ईसाई होते हुए भी उन्हें केवल जैनधर्म ही नहीं, अन्य धर्मों के विषय में भी जानकारी थी। वे सदा अन्य धर्मावलम्बियों को अपने घर बुलाया करते थे। उनका उद्देश्य कभी यह नहीं रहा, जैसी कि भारत में पादरियों के सम्बन्ध में धारणा है, कि किसी से परिचय-मैत्री कर धीरे-धीरे उसका धर्मपरिवर्तन करने की चेष्टा करें। उनके चर्च की ओर से प्रतिवर्ष ग्रीष्म काल में 'गार्डन पार्टी होती थी। उसमें वे अन्य देशों के लोगों को ही नहीं, अपने परिचित-अपरिचित अन्य धर्मावलम्बियों को भी बुलाते थे। उनका व्यवहार सभी के साथ शिष्ट और सममावी था। वे जब तक बालहम चर्च में रहे, उनसे हमारा अच्छा संपर्क रहा। वे हमारे यहाँ अनेक बार खाना खाने भी आये। व्यक्तियों की बात तो दूर, ब्रिटिश काउन्सिल' जैसी संस्थायें भी इसी उद्देश्य से काम करती हैं, परिचय, जिज्ञासा शान्ति और ज्ञानवृद्धि।

इंग्लैंड, आयरलैंड तथा अफ्रीका के देशों में मैं जहाँ जहाँ रहा, मैंने कभी यह अनुभव नहीं किया कि मुझसे धर्म के कारण किसी ने अन्यथा भाव से व्यवहार किया हो। मुझे सदैव अच्छे पड़ोसी मिले, परिचित मिले, मैं बराबर उनके यहाँ भोज और पार्टियों के आमंत्रण पर जाता था। जब उन्हें हमारे शाकाहारी होने का पता चलता था, तो इस बात का प्रयत्न करते थे कि हमारे भोजन में गल्ती से ऐसी चीज न चली जावे, जो शाकाहार में शामिल न हो। पहले वे यही समझते थे कि मैं जैन होने के कारण शाकाहारी हूँ। पर बाद में मैंने उन्हें स्पष्ट किया, "प्रारंभ में जन्मजात जैन होने से मैं संस्कारवश शाकाहारी रहा, पर अब वयस्क होने पर हम स्वयं सोचने लगे हैं कि हमें शाकाहारी रहना चाहिये।" मुझे यूरोप में अनेक ऐसे ईसाई मिले जो मुझसे भी कट्टर शाकाहारी थे। वे दूध, दूध से बनी चीजें-मक्खन, पनीर आदि भी नहीं खाते थे।

भारत में धर्म के प्रति लोगों की आस्था क्रमशः घटती जा रही है, पर हमारे अपने अनुभव में, इंग्लैण्ड में इसके विपरीत धार्मिक आस्था बढ़ रही है। हमारे यहाँ भले ही नये नये मन्दिर बन रहे हैं, पंच कल्याणक प्रतिष्ठायें हो रही हैं, गजरथ निकल रहे हैं, पर इंग्लैण्ड में भले ही नये गिरजाघर न बन रहे हों, पर पहले से बने गिरजाघरों की मरम्मत देखभाल आदि पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता है। अपने लम्बे प्रवास काल में मुझे कभी यह सुनने को नहीं मिला कि अमुक जगह कोई नया गिरिजाघर बनने वाला है। उसके लिये चन्दा एकत्र किया जा रहा है।

अपने विदेश प्रवास में मुझे अनेक बार पूर्वी और पश्चिमी यूरोप जाने के अवसर मिले। प्रायः सभी जगह मैंने वहाँ के गिरजाधर भी देखे। वहाँ जो शान्ति का अनुभव होता है, वह बिना उनमें जाये, अकल्पनीय ही है।

भारत में एक ही शहर में कई मन्दिर होते हैं और कुछ लोगों के अपने रुचि के अनुकूल खास-खास मन्दिर बन जाते हैं। वे उसी में विशेष रूप से जाना पसन्द करते हैं। यही स्थिति विदेशों में भी है। यह जरूरी नहीं कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई व्यक्ति अपने निकट के गिरजाघर में जावे। सभी गिरजाघरों में प्रार्थना का एक निश्चित समय रहता है। रविवार का प्रातः का समय-सप्ताह में केवल एक दिन। इस दिन सभी सदस्य समय पर गिरजाघर पर पहुँचते हैं, सामूहिक प्रार्थना करते हैं, धर्मगुरु का प्रवचन सुनते हैं। इस कार्यक्रम को ईसाइयों की भाषा में 'सर्विस' कहा जाता है। यह प्रायः ९० मिनट को होती है। धर्मगुरु पहले से ही यह तय करता है कि किस हफ्ते बाइबिल का कौन-सा अंश पढ़ा जायेगा या कौन-सी प्रार्थना होगी। वहाँ पर्याप्त संख्या में बाइबिल और प्रार्थना पुस्तकें रहती हैं। हम जब भी वहाँ गये, हमें, सदैव ये पुस्तकें मिलीं। कुछ लोग अपनी निजी पुस्तकें भी लाते हैं। 'सर्विस' के समय गिरजाघर प्रायः पूरा भर जाता है, पर यह कभी नहीं देखा गया कि लोग अनियंत्रित हों, शोरगुल करें या आपसी बातें करने लगें। 'सर्विस' के समय चर्च-संगीत या पादरी की आवाज के सिवा कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ती। लोग अपने-अपने स्थानों पर बैठे रहते हैं। हमने वहाँ कभी यह नहीं देखा कि किसी व्यक्ति विशेष के आने पर किसी अन्य व्यक्ति ने अपना स्थान छोड़ा हो या किसी से कोई स्थान-विशेष खाली करने के लिये कहा गया हो। 'सर्विस' के समय 'आरती' से इतना दान प्राप्त हो जाता है कि इससे चर्च का व्यवस्था व्यय, धर्मगुरु की आजीविका राशि तो पूरी होती ही है, इसका कुछ अंश सदैव धर्म प्रचार एवं साहित्य प्रणयन के लिये रखा जाता है।

पुस्तकालय-विज्ञानी होने के कारण, प्रकाशित पुस्तकों के सम्बन्ध में अपने अनुभव से मैं यह कह सकता हूँ कि वहाँ धार्मिक विषयों पर जितनी पुस्तकें छपती व बिकती हैं, उतनी कहीं नहीं। प्रत्येक पुस्तक के कम-से-कम १०-११ हजार प्रतियों से कम के संस्करण नहीं निकलते। बाइबिल का तो प्रत्येक संस्करण १-१ लाख प्रतियों का होता है। इससे भी अधिक आश्चर्य की बात शायद आपको यह लगे कि आजकल ही नहीं, प्रारम्भ से ही बाइबिल शायद दुनिया की सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तक रही है। इसका प्रतिवर्ष कोई-न-कोई संस्करण प्रकाशित होता ही रहता है और ईसाई धर्म के सम्बन्ध में आलोचना, प्रत्यालोचना और विवेचना की पुस्तकें भी मुद्रित होती रहती हैं। धार्मिक पुस्तकों के सम्बन्ध में हमने एक बात यह भी देखी कि वहाँ केवल ईसाई धर्म सम्बन्धी पुस्तकें ही नहीं, अन्य धर्मों के सम्बन्ध में भी पुस्तकें प्रकाशित होती हैं और इन पुस्तकों के लेखक और प्रकाशक प्रायः ईसाई ही होते हैं। यह बात भी कुछ अटपटी लग सकती है कि जैन धर्म या अन्य धर्मों के सम्बन्ध में जितनी विस्तृत जानकारी मुझे अपने विदेश-प्रवास के दौरान इन विदेशी पुस्तकों से मिली, उनती अपने जीवन के प्रारम्भिक पच्चीस वर्षों में भारत में अपने घर में, संस्थाओं में या जैन परिवारों के बीच रहने पर भी नहीं हुई। इन पुस्तकों से मुझे धर्मों के सम्बन्ध में तुलनात्मक दृष्टि से सोचने की दृष्टि मिली और यह भी जानने की इच्छा हुई कि अन्य धर्मों की क्या विशेषतायें हैं? विदेशों में मुझे जितने अधिक विविध धर्मावलम्बियोंसे मिलने और उनके साथ रहने का अवसर मिला, उससे मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि अन्य धर्मों के सम्बन्ध में मेरी पूर्वाग्रह या संकुचित दृष्टि लगभग दूर-सी हो गई। सम्भवतः यही कारण है कि भारत लौटने पर जिस कार्यालय में मेरी नियुक्ति हुई, वहाँ सबमें पहली नियुक्ति मैंने एक अन्य धर्मावलम्बी की ही कराई।

इंग्लैंड में रहते हुए मैंने एक अन्य तथ्य भी देखा कि वहाँ की पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रायः धार्मिक विषयों पर विवादास्पद लेख प्रकाशित होते रहते हैं। ये लेख प्रायः ऐसे होते हैं जिनकी चर्चा काफी समय तक होती रहती है। इनके विषय में लम्बे समय तक प्रतिक्रियायें छपती रहती हैं। इन लेखों में प्रायः धर्म सम्बन्धी किसी नई बात या व्याख्या को उठाया जाता है पर यह आवश्यक नहीं कि ये लेख केवल ईसाई जगत से ही सम्बन्धित हों। दैनिक-साप्ताहिक पत्रों में अन्य धर्मों के सम्बन्ध में भी लेख प्रकाशित होते हैं और लोग उन्हें शौक से पढ़ते हैं।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org